तेरापंथ के दृढ़धर्मी श्रावक : अर्जुनलालजी पोरवाल

☐ **मुनि श्री बुद्धमल्ल**
युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

रावजी की नौकरी—अर्जुनलालजी का जन्म वास नामक ग्राम में रायचन्दजी पोरवाल के घर संवत् १६५३ में हुआ। वे चार भाई थे, प्रथम भाई कालूलालजी तथा चतुर्थ भाई मनोहरलालजी की मृत्यु बाल्यकाल में ही हो गई, अत: अर्जुनलालजी और सोहनलालजी ये दो भाई ही रहे। घर की आर्थिक स्थिति साधारण थी। उनके पिता वास में ही अन्न तथा वस्त्र की दुकान करते थे। उससे घर का व्यय भी कठिनता से ही निकल पाता था। अर्जुनलालजी ने नौकरी करने का निश्चय किया। खोज करने पर उन्हें मेरपुर रावजी के यहाँ नौकरी मिल गई। शीघ्र ही वे वहाँ के खजांची बन गये। एक दिन उन्हें एक पशु-पालक से खरीदे गये पशुओं का मूल्य चुका देने के लिए कहा गया। लेखा करते समय उन्हें ज्ञात हुआ कि राव साहब के 'रसोड़े' में पकने वाले मांस का स्रोत यही पशु-पालक है। वे निरीह पशुओं के वध में सहयोगी बनने से घबराये। लेखा-जोखा बीच में ही छोड़कर उन्होंने रावसाहब से कहा—"जैन हूँ, अत: यह कार्य किसी भी स्तर पर करना नहीं चाहता।" रावसाहब ने उनको समझाने का काफी प्रयास किया कि इसमें तुम्हें कौनसी हिंसा करनी पड़ती है ? तुम्हें तो केवल हिसाब करके मूल्य चुकाना पड़ता है, परन्तु उन्होंने वह कार्य करना स्वीकार नहीं किया। अपना वेतन लिये बिना ही वे वहाँ से अपने घर चले आये। कालांतर में जब रावजी वास आये, तब उनका अवशिष्ट वेतन उन्हें देने लगे परन्तु उन्होंने उसे लेने से इन्कार कर दिया। आखिर रावजी ने उनके सम्बन्धियों के माध्यम से वह रकम उनकी पत्नी के पास भिजवा दी।

तान्त्रिक से झगड़ा—अर्जुनलालजी वास में आकर वहाँ की दुकान का कार्य देखने लगे। वहाँ नवला नामक एक तेली तन्त्र-क्रिया का जानकार था, उसने उनके यहाँ से कुछ रुपये उधार लिये, परन्तु बहुत दिन हो जाने पर भी वापस नहीं लौटाये। उन्होने तब उगाही के लिए उसके घर पर अपना आदमी भेजा। तेली ने उसे डरा-धमका कर वापस भेज दिया। अर्जुनलालजी को उसका वह व्यवहार बहुत बुरा लगा। वे स्वयं उसके घर जाने को उद्यत हुए। कई व्यक्तियों ने उनको टोकते हुए कहा कि वह तान्त्रिक है, अत: उससे उलझना लाभदायी नहीं है। अर्जुनलालजी निर्भीक व्यक्ति थे, अत: किसी का भी कथन उन्हें प्रभावित नहीं कर सका, वे तत्काल वहाँ गये और अपने पैसे माँगने लगे। तेली उनसे भी उलझ पड़ा उसने धमकी देते हुए कहा—"तुमने मुझे समझ क्या रखा है ? मैं मूठ मार कर तुम्हें इसी समय समाप्त कर सकता हूँ।" उसके गर्वोक्तिपूर्ण कथन ने अर्जुनलालजी को उत्तेजित कर दिया। उन्होंने आव देखा न ताव चील की तरह झपटे और भुजाओं में कसते हुए उसे पार्श्ववर्ती गड्ढे में ढकेल दिया। उसके अनेक चोटें आईं। बहुत दिनों के उपचार के पश्चात् ही वह ठीक हो पाया—उसी दिन से उसकी तान्त्रिक विद्या की धाक सदा के लिए समाप्त हो गई।

भौई और भोजन—मेवाड़ में राखी के त्यौहार से पूर्ववर्ती रविवार के दिन 'बीर फूली' नामक त्यौहार मनाया जाता है। वह भाइयों की ओर से बहिनों के लिये मनाया जाने वाला त्यौहार है। उस दिन बहिन-बेटियों को बुलाया जाता है और दाल बाटी तथा चूरमे का भोजन कराया जाता है। उस दिन जब अर्जुनलालजी सायंकालीन भोजन करने के लिए घर आये तब उनकी थाली में भी चूरमा, बाटी और दाल परोसी गई। सबसे छोटे भाई मनोहर ने उनके साथ बैठ कर ही भोजन करना चाहा परन्तु उन्होंने उसे अपने साथ नहीं बिठाया। बाल स्वभाव के कारण वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूठ गया और सायंकालीन भोजन किये बिना भूखा ही सो गया। रात्रि में अचानक उसके पेट में पीड़ा प्रारम्भ हुई और वह किसी भी उपचार से शान्त नहीं हुई। प्रातःकाल होने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई।

उस दुर्घटना से अर्जुनलालजी को बड़ा आघात लगा—भाई के साथ किये गये अपने रूखे व्यवहार से उन्हें बड़ी आत्म-ग्लानि हुई। उन्होंने उस दिन के पश्चात् कभी चूरमा नहीं खाया। फूली के दिन फिर कभी उन्होंने भोजन भी नहीं किया। प्रतिवर्ष उस दिन को उन्होंने भाई की स्मृति में उपवास करके ही मनाया।

भाई का विवाह—मेवाड़ में उन दिनों लड़कियों के रुपये लिए जाते थे, अतः साधारण आर्थिक स्थिति वाले लड़कों का विवाह प्रायः कठिनता से ही हो पाता था। अर्जुनलालजी के छोटे भाई सोहनलालजी लगभग २५ वर्ष के हो गये फिर भी उनके लिए कोई सम्बन्ध नहीं मिल पाया। एक दिन उनकी माता ने अर्जुनलालजी को व्यंगपूर्वक कहा—"छोटा भाई जवान होकर भी कुँवारा घूम रहा है, इसकी न तुझे कोई चिन्ता है और न लज्जा, तेरा घर बस गया इसलिए तुझे फुरसत ही कहाँ रह गई जो भाई की बात सोचे।"

माँ के उस व्यंग्य-बाण ने उनके हृदय पर ऐसी चोट की कि वे तिलमिला उठे। उन्होंने उसी समय यह प्रतिज्ञा कर ली कि भाई का विवाह करने से पूर्व वे अपनी पत्नी से बोलेंगे तक नहीं। उसी दिन से वे उस कार्य के पीछे पूरी शक्ति से लग गये। लगभग तीन महीनों का समय पूर्ण होते-होते उन्होंने भाई का विवाह सम्पन्न कर दिया।

अधिकार-त्याग—पिता रायचन्दजी ने एक बार दोनों भाइयों से यह वचन लिया कि जो भाई वास से बाहर जाकर पृथक् कार्य करना चाहेगा वह यहाँ की चल तथा अचल सम्पत्ति में से कोई भाग नहीं लेगा। पिता की मृत्यु के पश्चात् वास की दुकान का कार्य सोहनलालजी देखने लगे और अर्जुनलालजी ने गोगुन्दा निवासी गेरीलालजी कोठारी के साझे में उदयपुर में दुकान कर ली। वह साझेदारी लगभग तीन वर्ष तक चली। उसके पश्चात् खाखड़ निवासी टेकचन्दजी पोरवाल के साथ साझा किया उसमें उन्हें काफी घाटा उठाना पड़ा। उस समय तक दोनों भाइयों का आय-व्यय साथ में ही चलता था। घाटा लगने पर सोहनलालजी ने उसमें कोई भी सहयोग देने से इन्कार कर दिया। फल यह हुआ कि अर्जुनलालजी को वह घाटा तो अकेले उठाना पड़ा ही, साथ में वास की समस्त सम्पत्ति के अधिकार का भी परित्याग करना पड़ा।

आर्थिक उतार-चढ़ाव—अर्जुनलालजी की नीति सदैव विशुद्ध रही थी। घाटा लगने पर भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया, ऋण-शोधन के लिये उन्होंने अपनी पत्नी के प्रायः सभी आभूषण बेच दिये। इतने पर भी वे पूर्ण रूप से ऋण-मुक्त नहीं हो पाये। अवशिष्ट ऋण उतारने के लिए वे गाँवों के व्यापारियों में उगाही करने बाहर चले गये। उन्होंने संकल्प कर लिया कि जब तक पूरा ऋण नहीं उतार दूँगा तब तक उदयपुर नहीं आऊँगा, वे गाँवों में उधार दिये गये माल का मूल्य उगाहते और वहीं से माँगने वालों को भेज देते। लगभग चार वर्षों तक उन्हें अनिकेतवासी होकर विभिन्न गाँवों में भटकते रहना पड़ा। अपने संकल्प की पूर्ति के पश्चात् ही वे उदयपुर में वापस आये।

उस समय उन्हें बड़ी कठिन परिस्थितियों में से गुजरना पड़ रहा था, न पास में कोई कार्य था और न पूँजी ही। किसी से ऋण लेने की भी उनकी इच्छा नहीं थी, घर का व्यय चलाने के लिए तब उन्होंने सट्टा करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उनके पास पुनः कुछ पूँजी एकत्रित हो गई। संवत् १६६२ में आचार्य श्री कालूगणी ने उदयपुर में चातुर्मास किया। उस समय मुनि श्री मगनलालजी ने उनको सट्टे का त्याग करवा दिया, उन्होंने तब फिर से कपड़े की दुकान प्रारम्भ कर दी।

धन के प्रति उनके मन में तीव्र लालसा कभी नहीं रही, फिर भी दुकान में अच्छी आय होते रहने के कारण वे धनी बन गये। व्यापार के अतिरिक्त ब्याज के कार्य से भी उन्हें अच्छा लाभ मिलने लगा। मेरपुर रावजी तो आवश्यकता होने पर दस-बीस हजार रुपये तक उन्हीं के यहाँ से लेते थे। वे उनके सौजन्य और सत्य व्यवहार पर बड़े मुग्ध थे। उनकी सम्पन्नता का लाभ अन्य भी अनेक व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार से मिलता रहा, किसी को सहयोग के रूप में तो किसी को रोजगार के रूप में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालान्तर में धार्मिकता की वृद्धि के साथ-साथ धन के प्रति उनकी उदासीनता बढ़ने लगी। उन्होंने स्वयं के लिए बीस हजार से अधिक पूंजी रहने का त्याग कर दिया। धार्मिक क्रियाओं में अधिक समय लगाते रहने के कारण दुकान पर बैठना भी प्रायः बन्द कर दिया। सारा व्यापार कार्य साझीदार ही देखा करते थे, अतः उनका विभाग बढ़ा दिया और अपना घटा लिया। घर का व्यय दुकान से निकलता रहे इतने मात्र से ही वे पूर्ण सन्तुष्ट थे।

धार्मिक वृत्ति—अर्जुनलालजी प्रारम्भ से ही धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। सन्त-समागम, तत्त्व-चर्चा तथा सामायिक आदि क्रियाओं में उनका मन बहुत लगता था। अनेक ढालें तथा थोकड़े उनको कण्ठस्थ थे—त्याग और तपस्या के क्षेत्र में तो अपने समय के वे अंगुली-गणनीय व्यक्तियों में थे। उन जैसी दृढ़ आस्था और सेवापरायणता भी विरल व्यक्तियों में ही उपलब्ध होती है। कष्टसहिष्णुता में भी वे निरुपम थे। निरन्तर वर्धमानता की ओर अग्रसर होने वाली उनकी विराग-वृत्ति आश्चर्यजनक कही जा सकती है। उन्हें अपने तन और मन पर एक प्रकार से अवर्णनीय नियन्त्रण प्राप्त था। उनकी पत्नी की प्रकृति बहुत कठोर थी, फिर भी वे अपने सन्तुलन को जरा-सा भी इधर-उधर नहीं होने देते थे। तीन पुत्र तथा दो पुत्रियों के पिता होने पर भी सन्तान-मोह से वे बहुत ऊपर उठे हुए थे। उन जैसे धर्मनिष्ठ श्रावक क्वचित् ही देखने में आते हैं।

स्वयं धार्मिक होने के साथ ही वे दूसरों को धार्मिक बनाने में भी बहुत रुचि रखते थे। जहाँ भी जाते वहाँ धार्मिक चर्चा छेड़ते। उनके द्वारा कही गई बात का प्रभाव बहुत शीघ्र होता था। एक बार दशहरा के अवसर पर राव साहब के निमन्त्रण पर वे मेरपुर गये। उस समय राव साहब के आदेशवर्ती अनेक ग्रामपति भी वहाँ एकत्रित थे। राव साहब ने अर्जुनलालजी से कहा—"मैं आपको भूमि देना चाहता हूँ जहाँ भी इच्छा हो स्वयं चुनाव कर लीजिये।" अर्जुनलालजी नम्रता से निवेदन किया—"भूमि उसी के लिये लाभदायक होती है जो स्वयं उसकी देखभाल कर सकता हो, मेरे लिये यह सम्भव नहीं है, अतः क्षमा ही चाहता हूँ परन्तु यदि आप देना चाहें तो एक अन्य वस्तु की माँग कर सकता हूँ।" राव साहब उन पर बहुत प्रसन्न थे अतः कहने लगे—"आप जो भी मागेंगे, अवश्य दिया जायेगा।" अर्जुनलालजी ने तब अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा—"आप की कृपा से वस्तुओं की मुझे कोई कमी नहीं है, मेरी माँग तो यह है कि आप और आपके सरदार शराब का परित्याग कर दें। एक साथ में पूरा नहीं छोड़ा जा सकता हो तो धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए छोड़ दें।" राव साहब तथा उपस्थित सभी सरदारों ने उनके कथन पर विचार किया और फिर राव साहब ने तो प्रतिमास चार दिन के लिये तथा अन्य १३ सरदारों ने आजीवन के लिए शराब का परित्याग कर दिया। अपनी पद्धति के अनुसार उन्होंने जल मँगाया और फिर प्रत्येक ने विधिवत् उसे जलांजलि दे दी।

दृढ़ आस्थावान—देव, गुरु और धर्म के प्रति उनकी आस्था बहुत प्रबल थी। इसी आस्था के बल पर उन्होंने विपत्तियों तथा कष्टों के अनेक सागर पार किये थे, स्वामी भीखणजी के नाम को तो उन्होंने मन्त्रवत् अपना लिया था। हर कठिन परिस्थिति में उनके मुख से सर्वप्रथम वही नाम निकलता था। एक बार वे वास से गोगुन्दा जा रहे थे। पूरा मार्ग पहाड़ियों और जंगलों में से ही गुजरता था। एक पहाड़ी नाले के मार्ग से ज्यों ही वे मोड़ पर पहुँचे तो देखा कि उसी मोड़ पर सामने से एक भालू आ पहुँचा है, मृत्यु के और उनके बीच में केवल ५-७ कदमों की ही दूरी रह गई थी। स्वामीजी का नाम जपते हुए उन्होंने अपनी स्थिति को समझने का प्रयास किया तो पाया कि दायें-बायें दोनों ओर पहाड़ियों का चढ़ाव था। पीछे छोड़ आये चढ़ाव पर भी भागते हुए चढ़ने की उनमें शक्ति नहीं थी। वे ठिठककर खड़े रह गये। भालू ने भी उनको देखा और फिर बाईं पहाड़ी पर चढ़ता हुआ जंगल में घुस गया। मार्ग को निरापद देखकर अर्जुनलालजी अपने गन्तव्य की ओर आगे बढ़ गये।

एक बार उन्होंने १४ दिनों की तपस्या का पारणा किया। पारणा के लिये बनाई गई ऊकाली में काली मिर्च के स्थान पर भूल से कोई जुलाब का चूर्ण डाल दिया गया। उससे उन्हें खून के दस्त होने लगे। तीन ही दिनों में उनकी हालत बहुत खराब हो गई। एलोपेथी औषध लेने का उन्हें त्याग था अतः गोगुन्दा के एक वैद्य का उपचार चालू किया गया। वैद्य ने जो औषध दी उसकी एक-एक मात्रा उन्हें प्रति घण्टा लेनी थी, दिन में तो वह क्रम चलता रहा परन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि में उन्होंने उसे लेने से इन्कार कर दिया। पारिवारिकों ने उन पर बहुत दबाव डाला परन्तु वे टस से मस भी नहीं हुए। वैद्य ने भय दिखलाया कि ऐसा न करने से सम्भव है तुम अपने प्राणों से ही हाथ धो बैठोगे। अर्जुनलालजी ने कहा—"औषध लेते हुए भी तो अनेक व्यक्ति मर जाते हैं तो फिर इसका क्या निश्चय है कि मैं नहीं मरूँगा। मैं जीवित रहने के लोभ में अपना व्रत भंग नहीं करूँगा।" स्वामीजी के नाम का जप करते हुए उन्होंने वह रात्रि आनन्द से निकाल दी और फिर कुछ ही दिनों में बिल्कुल स्वस्थ हो गये। उनकी सुदृढ़ आस्था ने उनको इस प्रकार से अनेक आवर्तों में से बाहर निकाला और तट पर पहुँचाया था।

विभिन्न प्रत्याख्यान— अर्जुनलालजी बारह व्रतधारी श्रावक थे। प्रतिदिन चौदह नियम 'चितार' कर वे अपनी दिनचर्या को और भी अधिक नियन्त्रित कर लेते थे। समय-समय पर अपने प्रत्याख्यानों को अधिकाधिक कसते रहने की प्रक्रिया ने उनके जीवन को काफी अंशों में आरम्भ-समारम्भों से मुक्त कर दिया। उनके प्रत्याख्यान विराग-प्रेरित तो हुआ ही करते थे परन्तु कभी-कभी उस विराग के उद्भावन में कोई घटना भी कारण बन जाती थी। संवत् २००७ में वे अपनी आँखों का आपरेशन कराने के लिए भिवानी गये। मार्ग में किसी रेलवे स्टेशन पर एक होटल से उनके साथ वाला व्यक्ति साग और पूड़ियाँ खरीदकर लाया। खाने की तैयारी की तब उन्हें पता चला कि वह साग निरामिष-भोजियों के लिये काम का नहीं है। अपनी पत्तल में आमिष को देखकर उनके मन में इतनी वितृष्णा हुई कि उसी समय उन्होंने बाजार में बने भोजन का सदा के लिए परित्याग कर दिया।

उनके कुछ विशिष्ट प्रत्याख्यान इस प्रकार थे—संवत् १९९२ में उन्होंने रात्रिभोजन, हरित्काय-भोजन और संचित जल-पान का आजीवन परित्याग कर दिया। उसी वर्ष आजीवन शीलव्रत ग्रहण कर चारों स्कन्ध-प्रत्याख्यान सम्पन्न कर दिये। तभी से प्रतिदिन "पौरसी-प्रत्याख्यान" रखने लगे तथा खाद्य और पेय के रूप में ८ द्रव्यों से अधिक ग्रहण करने का त्याग कर दिया। फिर संवत् १९९९ से केवल ६ द्रव्य ही रखे। वे इच्छा व्यक्त करके कोई भोज्य पदार्थ नहीं बनवाते, जो परोसा जाता वही खा लेते। भोजन में नमक आदि की अल्पाधिकता होने पर भी वे कभी व्यक्त नहीं करते। स्नान के लिए दो सेर अचित्त जल से अधिक का प्रयोग नहीं करते। संवत् १९८६ में उन्होंने दहेज लेने तथा देने का, दहेज लेने वाले के वहाँ भोज में सम्मिलित होने का, मृत्यु-भोज करने तथा उसमें सम्मिलित होने का परित्याग कर दिया। पहले वे सामाजिक भोज में सम्मिलित होते थे परन्तु बाद में उसका भी परित्याग कर दिया। प्रतिदिन प्रतिक्रमण करते और कम से कम १२ सामायिक करते। प्रतिवर्ष आचार्य श्री की सेवा में जाते। अधिक समय निकलने पर घी का परित्याग रखते।

महान् तपस्वी—अर्जुनलालजी का एक महान् तपस्वी श्रावक थे। तपस्या उनके जीवन का संबल बन गयी थी। प्रतिवर्ष कोई न कोई लम्बी तपस्या अवश्य करते थे। पारणा के विषय में वे कभी बहुत पहले नहीं बतलाते थे। परिवार वाले पूछते रहते तब वे प्रायः वही उत्तर देते कि पारणा करना होगा तब मैं स्वयं कह दूंगा। वे यथासम्भव चौविहार तपस्या करने का ही प्रयास करते। लम्बी तपस्याओं में भी १०-१२ दिनों के अन्तर से ही प्रायः जल ग्रहण करते। अन्तिम १२ वर्षों में अचक्षु रहे, फिर भी उनकी तपस्या का क्रम कभी भंग नहीं हुआ। वे पहले प्रतिमास २ उपवास किया करते थे, संवत् १९९२ से ४ उपवास करने लगे, उसके पश्चात् संवत् १९९७ से पाँचों तिथियों के उपावास प्रारम्भ कर दिये तब प्रतिमास कम से कम १० उपवास नियमतः होने लगे। पहले वे प्रत्येक दीपावली पर "बेला" किया करते थे, संवत् २००० से "तेला" और २४ प्रहरी पौषध करने लगे, संवत् १९९२ से उन्होंने प्रतिवर्ष पर्युषण-पर्व पर अठाई तप प्रारम्भ किया, वह अन्तिम वर्ष तक निर्विघ्न चलता रहा। एक बार चौविहार लड़ी तप करते हुए वे संलग्न रूप से ९ तक चढ़े और फिर वैसे ही उतरे। संवत् १९८८ में यही लड़ी-तप उन्होंने दूसरी बार भी किया। एक बार २१ दिनों तक का और दूसरी बार १५ दिनों तक का चौविहार लड़ी-तप भी उन्होंने किया। उनकी समग्र तपस्या के उपलब्ध आँकड़े अग्रोक्त हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१३००	७५	७०	५	१०	४	४	३१	४	२	२	२	२	२	२	२

१७	१८	१९	२०	२१	२८	२९	३०	३१	३२	३५	३६	४४	४६	५२	६२
२	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

कुछ बड़े आँकड़े—अर्जुनलालजी के धार्मिक उपक्रमों के कुछ अन्य आँकड़े भी काफी बड़े और विचित्र हैं। पचासी सहस्र के लगभग सामायिक, पन्द्रहसौ के लगभग पोरसी, प्रतिदिन कम से कम पाँचसौ गाथाओं का स्वाध्याय, बारहसौ के लगभग चतुष्प्रहरी तथा अष्टप्रहरी पौषध उनके अतिरिक्त जो विशिष्ट पौषध उन्होंने किये उनकी तालिका इस प्रकार है—

१६ प्रहरी	१००	४८ प्रहरी	३
२४ प्रहरी	५४	५२ प्रहरी	३
३२ प्रहरी	२०	६४ प्रहरी	३
४४ प्रहरी	१०	९६ प्रहरी	१

उपर्युक्त पौषधों में ६४ प्रहरी तीनों पौषध विभिन्न समय में की गयी तीन अठाईयों में किये गये तथा ९६ प्रहरी पौषध ३५ दिनों की तपस्या के प्रथम १२ दिनों में किया।

अन्तिम समय—अर्जुनलालजी ने अपने जीवन-काल में अनेक दीक्षार्थी भाई-बहिनों की दीक्षा में सहयोग दिया। उनमें साध्वी नजरकंवरजी (वास वाली) भी एक थी। उन्होंने एक बार उनसे कहा कि आपने मेरी दीक्षा के लिए जो प्रयास किया वह मेरे पर आपका एक ऋण है। अवसर आने पर मैं उसे उतारने का प्रयास करूँगी। संवत् २०१७ में वह अवसर आ गया। अर्जुनलालजी रुग्ण हो गये और धीरे-धीरे उनकी रुग्णता अन्तिम स्थिति तक पहुँच गयी। माघ का महीना था। उदयपुर में उस समय साधु-साध्वियों का संयोग नहीं था, स्थानीय श्रावक-श्राविकाएँ तथा उनके परिजन ही उन्हें धर्म-आराधना का सहयोग दे रहे थे। आचार्यश्री तुलसी का विहरण उस वर्ष मेवाड़ में हो रहा था। मर्यादा-महोत्सव आमेट में मनाया जाने वाला था। वहाँ संघ एकत्रित हो उससे पूर्व साध्वी नजरकंवरजी आदि कुछ सिंघाड़ों का उदयपुर जाना हुआ। उन्हें जब अर्जुनलालजी की स्थिति का पता लगा तो वे तत्काल उन्हें दर्शन देने के लिए गयीं। यथासमय उन्होंने उनको धार्मिक सहयोग दिया। संवत् २०१७ माघ कृष्णा ३ को प्रातः उनकी शारीरिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी। तब उनकी बहिन ने उनको चौविहार संथारा करा दिया। पाँच मिनिट के पश्चात् ही उनका देहावसान हो गया।

□□□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org